द्वितीय अध्याय
'अन्ततः''उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा'

: द्वितीय अध्याय :

'अन्ततः' उपन्यास की कथावस्तु की समीक्षा

२.१ कथावस्तु का स्वरूप :-

कथावस्तु उपन्यास का प्राण होता है। इसीलिए उसे उपन्यास का सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। उपन्यास जीवन की प्रतिकृति होने के कारण इसकी कथावस्तु क्रिया-कलापों और घटनाओं से सम्बन्धित होती है। उपन्यास में कथावस्तु का ऐसा गठन होना चाहिए जिसमें घटनाएँ सुसम्बध्द और व्यवस्थित तथा श्रृंखलाबध्द हो, जिससे उसमें प्रवाह तथा गतिशीलता बनी रहे। इसके विपरीत उसमें जितनी अव्यवस्थाएँ होंगी, वह उतना ही असफल और प्रभावहीन होगा। प्रतापनारायण टंडन ने कहा है - "कथानक उपन्यास का वह मूल ढाँचा होता है जिसपर उपन्यास रूपी विशाल भवन का निर्माण किया जाता है।"[१] अतः प्रत्येक उपन्यासकार को अपनी कथावस्तु के चयन में और उसकी संस्थापना में अत्यन्त जागरूक तथा सजग रहने की आवश्यकता है।

उपन्यासकार कथावस्तु का चयन इतिहास, पुराण, जीवनी, परम्परा तथा यथार्थ जीवन से करता है और उसमें कल्पना का मिश्रण करके उसे पूर्णता प्रदान करता है, किन्तु उसके संगठन की और उसमें प्रभावोत्पादकता लाने की पूरी जिम्मेदारी उसकी ही होती है। उपन्यासकार को ऐसी ही कथावस्तु का चयन अथवा सृजन करना चाहिए जो जीवन की स्वाभाविकता तथा समग्रता से परिपूर्ण हो। इस बातपर विल्यिम हड्सन ने भी बल दिया है।

उपन्यास में व्याप्त कुतुहल का तत्व ही विकास पाता है। कथावस्तु के समुचित विकास के लिए उसे घटनाओं के पूर्वापार सम्बन्ध, कुतुहल और औचित्य को ध्यान में

---

१. प्रतापनारायण टंडन : "उपन्यास कला" - पृ.क्र.१४०

रखकर स्थिर करना चाहिए। कथावस्तु के समस्त अंगोंका सुन्दर संगठन, घटनाओंका समुचित विन्यास उपन्यास को सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक होता है। व्यर्थ का त्याग कर रमणीय वर्णन, चरित्र उद्‌घाटन एवं मनोविश्लेषण करनेवाले वार्तालाप के द्वारा कथानक का विकास होना चाहिए।

उपन्यास के कथानक को तीन भागों में बाँटा जा सकता है - (१) प्रारंभ या प्रस्तावना (२) मध्य या विकास तथा (३) समाप्ति या परिणाम।

उपन्यास की महत्ता उसकी कथावस्तु के ठोस सत्य पर आधृत होती है। गंभीर प्रभाव के अभाव में कथावस्तु प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती। अतः देखना यह है कि किसी उपन्यास की कथावस्तु में वे गुण कौन से होते हैं, जिनसे उसमें संगठन आता है और उपन्यास सफल एवं प्रभावशाली बनता है।

२.२ कथावस्तु के गुण :-

कथावस्तु में निम्न गुणों का होना अनिवार्य माना जाता है।

२:२:१ मौलिकता :-

मौलिकता कथावस्तु का अनिवार्य गुण है। उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपनी प्रतिभा के बल पर पाठकों को चिर-परिचित घटनाओं को उनके समक्ष नवीन रूप में मौलिकता के साथ प्रस्तुत करें। मौलिकता विषय की नवीनता, नवीन घटनाओं की कल्पना और उनके संयोजन के ढंग, वर्णन और विन्यास की विशेषताओं में देखी जाती है।

२:२:२ संभाव्यता :-

पाठक उपन्यास में अपने ही जीवन-जगत् का प्रतिबिम्ब देखना चाहता है और इसलिए वह उसे पढ़ता है। जन-जीवन में जो घटनाएँ घटित न हो सके उनका वर्णन इस लगाव के लिए घातक होता है, इसीलिए उपन्यासकार को सदैव घटनाओं की सम्भाव्यता

का ध्यान रखना पडता है। सम्भाव्यता और औचित्य का ध्यान हमें घटनाओं के साथ साथ वार्तालाप, वेशभूषा, वर्णन में भी रखना पडता है।

२:२:३ प्रबन्ध कौशल्य :-

कथावस्तु की मुख्य और गौण कथाओं को औचित्य और प्रभाव के साथ संगठित करने की चतुराई प्रबन्ध कौशल्य है। इसकी उपन्यास में अनिवार्य आवश्यकता है। अन्यथा उपन्यास असफल होगा।

२:२:४ सुगठन :-

प्रबन्ध कौशल के साथ साथ समस्त उपन्यास की एक सुगठित रचना होनी चाहिए, उसमें आवश्यक का गृहण कर अनावश्यक का त्याग करना चाहिए।

२:२:५ रोचकता :-

"कारण-कार्य की शृंखला को ध्यान में रखते हुए कुतुहल को तीव्र बनाते चलना उपन्यास में रोचकता का प्राण है।"[१] रोचकता ही पाठकोंको उपन्यास की ओर आकर्षित करती है। रोचकता लाने के लिए उपन्यासकार को आकस्मिक और अप्रत्याशित का सहारा लेकर कौतुहल और नवीनता की सृष्टि करनी चाहिए।

२.३ कथावस्तु का महत्त्व एवं विशेषताएँ :-

उपन्यास की रचना कथानक के अभाव में असम्भव है इसीलिए विद्वानोंने कथानक को उपन्यास के विविध तत्वों में सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया है। अतः कथानक का सशक्त एवं प्रखर रूप प्रस्तुत होने के लिए निम्न विशेषताओं का होना आवश्यक है। -

---

१. भगीरथ मिश्र : "काव्यशास्त्र" - पृ.७७

२:३:१ मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या :-

मनुष्य के जीवन की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों को किसी कथानक में समुचित रूप से सुनियोजित करके उपस्थित करना चाहिए क्योंकि उससे उपन्यासकार की जीवन-दृष्टि का आभास पाठक को मिलता है।

२:३:२ प्रतिनिधित्व का संकेत :-

कथानक की यह दूसरी विशेषता है जो एक विशिष्ट युग, समाज तथा जीवन के प्रतिनिधित्व का संकेत उपस्थित करती है। कथावस्तु के द्वारा ही पाठक को इस बातका परिचय मिलता है कि वह उपन्यास किस युग अथवा समाज के किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचना है।

२:३:३ जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण :-

कथानक का प्रत्यक्ष और निकटतम सम्बन्ध पात्रों और उनके चरित्र-चित्रण से होता है। इसीलिए वह उन पात्रों के जीवन की विविध अवस्थाओं के चित्रण का आधार होता है, - "इस दृष्टि से उसमें चित्रण की यथार्थता, चित्रण की सूक्ष्मता, चित्रण की गहनता तथा चित्रण की मार्मिकता आदि विशेषताएँ होती है।"[१]

२:३:४ जीवन के पक्षों का मूल्यांकन :-

उपन्यास के कथानक में उपन्यासकार जीवन के विविध पक्षों के अपेक्षित महत्त्व का मूल्यांकन करता है।

२:३:५ अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति :-

कथावस्तु की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि जो अनुभूतियाँ उससे सम्बध्द है उनकी अभिव्यक्ति पूर्णता से हुई है या नही, क्योंकि अभिव्यक्ति की पूर्णता कथा को प्रभावपर्ण बनाने में सहायक होती है। डॉ.शन्तिस्वरूप गुप्तजी ने कहा

---

१. प्रतापनारायण टंडन : "हिन्दी उपन्यास कला" - पृ.१५२

है - "उपन्यासकार को कथानक की प्रेरणा जीवन के किसी अनुभव से मिलती है। जो भी विचार भाव या स्थिति रचनाकार के मस्तिष्क में अंकुरित होती है, वही रचना के क्षणों में कथानक का बीज बन जाती है।"[१]

उपन्यास की कथावस्तु में चरित्रों का विकास भी होता है और घटनाओं का वर्णन भी। इसमें कभी चरित्रों को प्रधानता दी जाती है और कभी घटनाओं को। इसके आधार पर कथावस्तु के दो भेद होते हैं -

१. चरित्र प्रधान कथावस्तु।

२. घटना प्रधान कथावस्तु।

उपन्यास जीवन का सर्वांगिन चित्रण प्रस्तुत करता है जो जीवन के अनेक रूप तथा विषम घटनाओं की पुंजी है। इसीलिए उपन्यास में भी अनेक प्रमुख और गौण घटनाएँ वर्णित होनी चाहिए जो चरित्रों के विकास में सहायक होती है। कुछ विद्वानों ने घटनाओं के आधार पर कथावस्तु के दो भेद किये हैं -

१. शिथिल अथवा असम्बध्द कथावस्तु।

२. संगठित अथवा सम्बध्द कथावस्तु।

उपन्यास की महत्ता उसकी प्रभावोत्पादकता में निहित होती है। असम्बध्द घटनाओं से युक्त उपन्यास अरूचिकर हो जाता है। अतः पाठकों की रूचि को निर्बाध बनाये रखने के लिये कथावस्तु की सम्बध्दता ही अपेक्षित होती है।

कुछ विद्वान घटनाओं की पारस्परिक सम्बध्दता के आधारपर कथावस्तु के दो भेद मानते हैं -

१. सरल कथावस्तु।

२. मिश्र कथावस्तु।

---

१. डॉ.शान्तिस्वरूप गुप्त : "उपन्यास : स्वरूप,संरचना तथा शिल्प" - पृ.क्र.७०

सरल कथावस्तु में घटनाओं का वैविध्य नहीं होता किन्तु मिश्र कथावस्तु वैविध्यपूर्ण होती है। इसीतरह कथावस्तु के दो प्रकार माने गये हैं -

१. मुख्य कथा या आधिकारिक कथा।

२. प्रासंगिक कथा।

२.४ <u>अभिव्यक्ति के प्रकार</u> :-

उपन्यासकार अपनी कथावस्तु की अभिव्यक्ति तीन प्रकार से करता है। पहला है वर्णनात्मक इसमें उपन्यासकार तटस्थ भाव से कथा को स्वयं कहता हुआ चलता है। दूसरा है पात्रों के मुख से। इसमें उपन्यासकार कथोपकथन के सहारे कथा को बुनता चलता है। तीसरा है पत्र प्रणाली। इसमें पत्रों के माध्यम से ही सारी कथावस्तु का संगठन किया जाता है। हडसन ने इन्हीं से मिलते-जुलते अभिव्यक्ति के निम्नलिखित तीन प्रकार माने हैं -

१. प्रत्यक्ष अथवा प्रबन्ध प्रणाली।

२. आत्मकथा प्रणाली।

३. पत्र प्रणाली।

कथावस्तु के अनेक प्रकार तथा उसकी अभिव्यक्ति के अनेक ढंग वर्णित करने से अभिप्राय उपन्यास के लिए कथावस्तु की महत्ता प्रतिपादित करना है। वही उपन्यास कथावस्तु की दृष्टि से सफल समझा जाता है जिसका कथानक रोचक, संभाव्य, मौलिक और प्रवाहमय हो। किसी भी प्रवाह को बांधना बहुत कठिन कार्य होता है क्योंकि वह गतिशील होता है और इसी गतिशीलता में अन्य विधाओं के साथ कथा-साहित्य में भी नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। उपर्युक्त गुणों का सहारा लेकर, परम्परागत रूढियों से थोडा हटकर डॉ.देवेश ठाकुर ने लगभग पिछले १५ वर्षों में कथाशिल्प में नए-नए तथा सार्थक प्रयोग किये हैं। उनके "शून्य से शिखर तक" उपन्यास के बाद यह बिल्कुल नया तथा सफल प्रयोग है "अन्ततः"।

२.५ "अन्ततः" उपन्यास की कथावस्तु :-

"अन्ततः" उपन्यास की कथा एक संवेदनशील और आधुनिक शिक्षित नारी के जीवन पर आधारित है, जिसे विवश होकर अनेक मानसिक यातनाओं से गुजरना पडता है। वसुधा एक सामान्य मध्यवर्गीय क्लर्क पिता की बेटी है, जो अतुल नामक उच्चशिक्षित, उच्चवर्गीय युवक के साथ प्रेमविवाह करती है। उच्च वर्ग, जिसके संस्कार, परिवेश, वैभव सब मध्यवर्ग से बिल्कुल भिन्न है जो मध्यवर्गीय लोगों से मेल नहीं खाते और यही कारण है वसुधा के प्रेमविवाह की असफलता का। क्योंकि शादी के बाद अतुल अपने व्यवसाय में रात-दिन इतना व्यस्त रहता है कि वह सब सुविधाएँ तो जुटा पाता है लेकिन पत्नी वसुधा के लिए समय नहीं दे पाता। वह आए दिन देर रात को घर लौटता है। या फिर घर में पार्टियाँ होती है और वसुधा इन पार्टियों में नुमाइश की वस्तु बनकर रह गयी या मेहमाननवाजी का साधन। और फिर अतुल के लिए सब व्यस्तता के बाद उसे सुलाने के लिए वसुधा एक गोली या टॉनिक बन कर रह गयी थी।

वसुधा को पहले तो यह सब अच्छा लगता रहा लेकिन बाद में इस सब से उसे ऊब होने लगी। वह अपने आप में सूनापन और अकेलापन महसूस करने लगी। आखिर उसने अतुल की ऐसी संपन्नता तो नहीं चाही थी जो उसका व्यक्तित्व ही समाप्त कर दे। उसने तो पूरे समर्पण के साथ अतुल से सिर्फ प्यार चाहा था। वसुधा अतुल को बदलने की, उसे समझाने की कोशिश करती है लेकिन उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। वह उसके बच्चे की माँ बननेवाली है यह सुनकर भी उसे कोई फर्क नहीं पडता। उलटा वह वसुधा को कहता है कि - "बच्चा तुम्हारी कोख में है। उसे तुम जनोगी। मैं क्या सोचूँ ? तुम्हारी ही जिद थी कि बच्चा चाहिए, मैंने तो कभी नहीं चाहा था कि इतनी जल्दी यह सब कुछ हो। अब उस सबकी शिकायत क्यों करती हो.....।"[१] इसतरह अपने व्यवसाय में व्यस्त अतुल गर्भवती वसुधा को छोड़कर विदेश चला जाता है और वापस लौटकर भी नहीं आता।

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ. ६७

पति का घर छोडकर वसुधा को "वर्किंग विमन्स हॉस्टल" में रहना पडता है। वह उपने बच्चे को बोर्डिंग स्कूल में रखती है और स्वंय "इंदिरा एक्सप्रेस" में पत्रकारिता करती है। इसी प्रेस में कार्यरत राघवन से वसुधा का परिचय होता है, जो इस मुसीबत की घडी में हर तरह से उसकी सहायता करता है और वसुधा की कमजोरी का नाजायज फायदा भी उठाता है। इसी दौरान एक दिन वसुधा की पहचान इन्दिरा प्रेस के सम्पादक पसरीचा से हो जाती है। वसुधा उनकी कर्तव्य निष्ठा और चिन्तन से प्रभावित होती है। वसुधा की तरह पसरीचा भी प्रेमविवाह की असफलता का शिकार बन चुके हैं। वे अपनी पत्नी पद्मा, जो कभी उनकी छात्रा रह चुकी है, उसे बहुत प्यार करतें थे किन्तु पद्मा बहुतही स्वच्छन्द स्वभाव की थी। वह तो सिर्फ पसरीचा का ऐश्वर्य और स्वच्छंदता के साथ घुमना फिरना चाहती थी। पद्मा के जिस सौंदर्य की ओर पसरीचा आकर्षित थे वही सौन्दर्य उनके लिए कीचड बन जाता है। उसके व्यवहार से पसरीचा को बड़ी आत्मग्लानी होती है। तनाव के बीच एक दिन पद्मा, उन्हें छोडकर कनाडा चली जाती है। पसरीचा को इस बात का बड़ा आघात पहुँचता है। पद, मान, प्रतिष्ठा और अनेक सुविधाओं के होते हुए भी उन्हें जीवन में खालीपन की एक कचोट सालती रहती है। वसुधा से उनका परिचय जब बढ़ता है तब पंद्रह वर्ष के इस गहरे खालीपन को भरने के लिए एक दिन वे वसुधा से मित्र बनने का प्रस्ताव बड़ी ही संयत और स्पष्ट भाषा में रखते हैं। दोनों का दुःख एक ही था - गहरा खालीपन। अतः इसी दुःख में डुबे दोनों परस्पर आकर्षण से मिलने-जुलने लगते हैं।

वसुधा और पंकज पसरीचा के मेल-मिलाप से राघवन को बड़ी ठेंस लगती है, जो कि उसके स्वोर्थ पर कुठाराघात था। क्योंकि वह वसुधा की सहायता से नया फ्लैट लेना चाहता है और साथ ही उसके संवेदनशील सहज यौवन का भी आनन्द लूटना चाहता है। राघवन के मनोभाव को वसुधा पूरी तरह जानती है लेकिन महानगर में आधार और सुरक्षा के अभाव में राघवन उसकी जो मदद करता है इसी उपकारों के बोझ के तले उसे राघवन की छेड़छाड़ न चाहते हुए भी सहनी पडती है। विवशता और अपनी कमजोरी में ही वह उसका संग-साथ निभाती चलती है। अपनी वैवाहिक असफलता का

खालीपन उसपर कुछ इस कदर हावी रहता है कि राघवन के हाथ को अतुल का हाथ समझकर अपनी कटि और त्रिवली पर उसके हाथ फिराने पर भी झिझकती नहीं। उसपर कुछ ज्यादा ही विश्वास रखती है। अकेलेपन के अहसास के कारण ही वह ऐसा करती है लेकिन, राघवन के स्वार्थी स्वरूप को देखकर वह विरक्त - सी हो जाती है। पसरीचा से सम्पर्क बढ़ने के बाद उसमें कुछ साहस आता है, जिससे वह राघवन से छुटकारा पाने की कोशिश करती है।

वसुधा अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए एक ऐसे मित्र की तलाश में थी जो उसका हमसफर बनने योग्य हो। इसी दौरान वह अपनी सहेली शालिनी के माध्यम से उसके मित्र एन्ड्रूज के दोस्त सुभाष से मिलती है। वसुधा की तलाश-वृत्ति हमउम्र, आकर्षक और खुले व्यवहारवाले सुभाष की ओर आकर्षित होती है। परिणामस्वरूप वसुधा पसरीचा और सुभाष के बीच चयन के द्वन्द्व में पड़ती है। पसरीचा से उसका मिलने-जुलने का सिलसिला तो था ही लेकिन वह उनके प्रस्ताव पर कुछ निर्णय नहीं ले पाती है। वसुधा शालिनी को बताती है कि वह अपनी खाली जिंदगी के बारे में सुभाष को लेकर कुछ विचार कर रही है। तो शालिनी वसुधा को दुबारा गलती करने से बचाती है, क्योंकि व्यावहारिक एवं बौध्दिक जगत की प्रतीक शालिनी सुभाष जैसे उपरी दिखावटी लोगों को खुब समझती है। वह वसुधा को समझाती है कि उसे एक ऐसा पुरूष चाहिए जो उसीका बनकर रहे। शालिनी नहीं चाहती कि अतुल के साथ हुई वसुधा की ट्रेजेडी फिर से दुहराई जाय वरना पुरूष ज्वर से पीड़ित वसुधा तो धोका खा ही जाती।

इसी बीच वसुधा को अविनाश की बीमारी की खबर मिलती है। अविनाश, वसुधा और अतुल के टुटे हुए रिश्ते का एक प्रतीक है जो माँ-बाप के होते हुए भी दूर बोर्डिंग स्कूल में पढ़ता है। उसकी बीमारी की खबर सुनकर वसुधा परेशान होती है। राघवन ने तो सिर्फ उसके यौवन और पैसों को चाहा था। वह ना ही वसुधा की परेशानियाँ जानना चाहता है और ना कभी अविनाश की पुछताछ करता है। अविनाश

की बीमारी में पसरीचा इन्सानियत के नाते वसुधा की मदद करते हैं। वसुधा उनके इस निस्वार्थी व्यवहार से बहुत ही प्रभावित हो उठती है।

अन्त में अपने खालीपन से थकी वसुधा शालिनी के दिए सुझाव पर भी बहुत विचार करती है और सुभाष के आकर्षण से अपने को मुक्त कर लेती है। अब उसके सामने एक ही विकल्प बचता है कि वह पसरीचा के साल भर से प्रस्तावित प्रेमबांह के आमन्त्रण को स्वीकार कर ले। कारण जो उसे चाहिए था, वह सब कुछ पसरीचा के व्यक्तित्व और कृतित्व में विद्यमान था। उनके सम्पर्क में आने पर उसमें कुछ साहस आता है, जिससे वह राघवन जैसे स्वार्थी पुरूष के सड़े-गले और घिनौने साथ को सदा-सदा के लिए नमस्कार कर देती है और अंत में बड़ी समझदारी से आत्मविश्वास के साथ पसरीचा का हाथ थामती है, जब उन्हें उसकी आवश्यकता थी।

२.६ <u>कथावस्तु की समीक्षा</u> :-

उपन्यासकार डॉ.देवेश ठाकुर का महत्व हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में एक प्रयोगधर्मी एवं प्रगतिशील उपन्यासकार के रूप में स्वीकार किया जाता है। अपने लगभग सभी उपन्यासों में देवेशजी ने नए शिल्प का प्रयोग किया है। "शून्य से शिखर तक" के बाद "अन्ततः" यह उपन्यास उनकी प्रयोगशीलता का सफल प्रयास है। जिसमें उन्होंने महानगरीय जीवन जी रहे व्यक्तियों के स्त्री-पुरूष सम्बन्धों, अन्तर्द्वन्द्वों और प्रेमविवाह की असफलताओं का बहुत ही कलात्मक एवं आकर्षक ढंग से चित्रण किया है। उन्होंने अत्यंत सावधानी और संयम के साथ स्त्री-पुरूष के परस्पर संबंन्ध और उनकी आवश्यकता को रूपायित किया है। डॉ.रवीन्द्रनाथ इसके बारे में कहते हैं - "समसामयिक नागरी स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की यथार्थ प्रस्तुति "अन्ततः" है।"[१]

---

१. डॉ.ब्रम्हदेव मिश्र : "पांडुलिपि" - (डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र) - पृ.११४

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु सरल है। आधिकारिक कथा के विकास में प्रासंगिक कथाएँ सहयोग देती हुई दिखाई देती है। "अन्ततः" उपन्यास में आधिकारिक कथा तो वसुधा और पसरीचा की है तथा शालिनी, राघवन और सुभाष की कथाएँ प्रासंगिक हैं। जो की आधिकारिक कथा में सहायक हुई है। उपन्यासकार की सफलता इस बात में निहित होती है कि वह सभी प्रासंगिक कथाओं का आधिकारिक कथा से अविछिन्न सम्बन्ध स्थापित कर दे। इस दृष्टि से उपन्यासकार देवेशजी के "अन्ततः" की कथावस्तु सफल बन गयी है।

इसमें शालिनी की कथा प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण है जो वसुधा की कथा को एक नया एवं व्यावहारिक मोड़ देकर बीच में ही लुप्त हो जाती है और आधिकारिक कथा को उद्देश्य की ओर अग्रसर करती है। राघवन तथा सुभाष की कथाएँ भी मुख्य कथा को विकसित करती है। नायिका वसुधा अपने पति से अलग होकर परिस्थितियों से जूझती है किन्तु विवशता में उसे राघवन की जघन्य हरकतों को सहना पडता है। बीच में वह इन्दिरा प्रेस के माध्यम से पंकज पसरीचा तथा शालिनी के माध्यम से सुभाष के सम्पर्क में आती है। अन्त में स्वयं को पुरूष के आकर्षण से मुक्त कर शुभ परिणय के लिए पसरीचा का सहारा बनकर जीवन-साफल्य की अनुभूति से भर उठती है। अतः वसुधा, पसरीचा, शालिनी, राघवन आदि के जीवन में घटित घटनाओं और उनके वैचारिक धरातलपर उपन्यास की कथावस्तु का सफल गठन एवं विकास हुआ है। कथा में घटित प्रसंग या घटनाएँ पाठकों की जिज्ञासा तथा कौतुहल को बढ़ाती है। परिणाम स्वरूप उपन्यास में रोचकता आई है, जो कि कथावस्तु का मूल गुण होता है। संभाव्यता और मौलिकता आदि गुण तो इसी गुण के उत्कर्ष हेतु होते हैं। अतः उपर्युक्त सभी गुणों एवं विशेषताओं के माध्यम से ही देवेशजी ने "अन्ततः" उपन्यास की कथावस्तु बड़े कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की है।

आधुनिकता की चादर ओढ़े हुए आज के इस समाज में सभी मानवीय रिश्ते स्वार्थ-पूर्ति तक ही सीमित होकर रहे हैं। अतः पर-निर्भरता की आतुर स्वीकृति

के कारण ही नारी पुरूष की दी हुई मर्यादाओं में जीने के लिए बाध्य हैं। स्त्री-पुरूष के वैवाहिक पवित्र रिश्ते में भी अगर समर्पण की कमी आती है, तो रिश्ता टूट जाने की सम्भावना होती है और टूटने के बाद भोगना नारी को ही पड़ता है "अनचाहे भी, क्यों कि उसे पुरूष की गर्म बाहों का सहारा चाहिए, एकाकी वह जी नहीं सकती, भले ही वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो। पुरूष के साहचर्य की यह अपेक्षा एक अनिवार्यता बनकर उसे पुरूष की शर्तों पर जीने को बाध्य करती है। और जहाँ यह बाध्यता नहीं, वहाँ भी समर्पण-भाव भले ही वह परस्पर समर्पण भाव से हो, प्रधान है। जहाँ समर्पण में कमी आई, रिश्ता गड़बड़ा जाएगा। यानी कहीं न कहीं बंधन की स्वीकृति आवश्यक है।"[१] और अगर नारी ने इस बंधन को तोड़ने का साहस भी किया हो तो वह इस पुरूष प्रधान समाज में अकेली जी नहीं सकती। उसका मन ठोस अवलंब की तलाश में निराशा भरे भटकता है। तब वह अनिर्णय की स्थिति में लगातार मानसिक पीड़ा और अनिश्चय का शिकार होती रहती है। वह लगातार इसी अन्तर्द्वन्द्व में पीसी जाती है। उपन्यास की नायिका वसुधा भी इसी अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हुई है। प्रेमविवाह की असफलता उसे एक ऐसे चौराहे पर खड़ा कर देती है जहाँ वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होकर भी अकेली जीने का साहस नहीं कर पाती। लेकिन अन्तमें समाज के अनेक दायरों में जखड़ी वसुधा अपने अन्तर्द्वन्द्वों से मुक्ति पाने में सफल हो जाती है।

परस्पर विश्वास ही वैवाहिक सम्बन्ध की नींव होता है जिसको बनाए रखने के लिए एक दूसरे की स्वतन्त्रता और सहमती की जरूरत होती है। अपेक्षाओं की पूर्ति न होनेपर इस सम्बन्ध में दरार पड़ती है। डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र का कथन है, "कतिपय अपेक्षाओं की पूर्ति भर करने के लिए एक दूसरे का इस्तेमाल करने का सामाजिक अधिकार विवाह संस्था के लिए कितना घातक है इसे, शहरी मध्यवर्ग की आकांक्षाओं भरी जिन्दगी में देखना कठिन नहीं।"[२] इसी कथ्य को ही देवेशजी ने प्रस्तुत किया है।

---

१. डॉ.ब्रम्हदेव मिश्र : "पांडुलिपि" - पृ - २१५

२. - वही - -वही- (डॉ.रवीन्द्रनाथ मिश्र।) पृ.२१७

जो लोग अपने जीवन साथी के प्रति कुछ अपेक्षाएँ रखकर विवाह सम्बन्ध को स्वीकार कर लेते हैं, वे अपेक्षाएँ भंग हो जानेपर जीवन के प्रति विरक्त हो जाते हैं। उनका मनोविज्ञान अतीत की स्मृतियों में कुछ ज्यादा ही खोया रहता है। वसुधा और पसरीचा दोनों की मानसिकता इसका प्रमाण है, किन्तु दोनों की स्थिति, सेक्स, वय आदि के साथ उनकी अपेक्षाओं की गुणात्मकता के कारण दोनों की प्रतिक्रियाओं में अन्तर हैं। जहाँ वसुधा को पुरूष और वैवाहिक जीवन से ही अरूचि हो जाती है वहीं पसरीचा को अपने अतीत से आत्मग्लानी तो होती है, पर नारी के प्रति उनके मन में अरूचि और घृणा नहीं उपजती। बल्कि वे इसी विश्वास के बल पर वसुधा के मन की झिझक को दूर करने में सफल होते हैं। वे जानते हैं कि पर-निर्भरता की आतुर स्वीकृति ही अतुल और वसुधा के सम्बन्ध विच्छेद के लिए कारण बन गयी थी। अतः आत्मनिर्भरता में ही मनुष्य निर्णयक्षम बनता है। इसीलिए वे वसुधा के अंतर्मन में झाँककर उसे पर्याप्त अवसर देते हैं। ताकि वह आत्मनिर्णय लेने में सफल हो सके। और इसका परिणाम भी सुखद ही रहा है। दोनों भी अपने आंतरिक द्वन्द्व से मुक्ति पाने में अन्त में सफल हो जाते हैं। भले ही यह अन्त विशिष्ट परिणति पानेवाला या चौकानेवाला न हो, पर आधुनिक जीवन में जुडे यथार्थ से जुड़ा हुआ है। और बम्बई जैसे महानगर में तो इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

सारे अन्तर्विरोधों के बावजूद "अन्ततः" वसुधा और पसरीचा को मिलाकर देवेशजी ने तमाम सम्भावनाओं के साथ नारी-पुरूष समता का जो हल पेश किया है वह भले ही तुष्टिदायक न रहा हो किन्तु, उनके मनोविज्ञान पर विचार किया जाए तो स्त्री-पुरूष को जोड़कर देखने का लेखक का प्रयास विवशता भरे जीवन के लिए पर्याय बनकर रहता है। अतः वसुधा और पसरीचा के माध्यम से जिन सम्भावनाओं को देवेशजी ने प्रस्तुत किया है वह निश्चित ही सराहनीय है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथाक्षेत्र बम्बई है और कथाकाल १९९०-९१ का है। उपन्यासकार ने इसमें किसी विशिष्ट एवं परम्परागत क्रम का निर्वाह नहीं किया है। बल्कि, इसमें विविध एवं विभिन्न शीर्षकों के माध्यम से कथा को विकसित किया है। एक सौ

तिरपन पृष्ठों के उपन्यास में विभिन्न शीर्षकों - परिचय-१, परिचय-२, दफ्तर में, अतीत-दो, संपर्क, स्मृतियाँ, नए मोड पर, उपकार की ओट में, अतीत के झरोखे, नए परिचय की मुस्कान, शब्दों के आइने में, अन्तर्द्वन्द्व के दायरे, आधार का असमंजस, अनिश्चित निर्णय की ओर, बढ़ते हुए तणाव के बीच, आश्वस्ति की साँस और अंतिम पड़ाव "अन्ततः" से कथा पूरी होती है जो कि इस कृति का शीर्षक भी है। यह लेखक का बुध्दिचातुर्य है।

उपन्यासकार ने कथावस्तु का संगठन वसुधा, पसरीचा, राघवन इन प्रमुख एवं सक्रिय पात्रों एवं शालिनी, सुभाष, एन्ड्रुज आदि सहायक पात्रों के आधार पर किया है। समुची वस्तु वसुधा और पसरीचा के मन एवं बाहय क्रिया व्यापारों के आसपास घुमती हुई अंतीम परिणति की ओर अग्रसर होती है। अन्य पात्रों के अन्त-र्बाहय रूपों का स्वतः ही उद्‌घाटन करती चलती है। इसमें वसुधा एवं पसरीचा के अन्तर्द्वन्द्वों, उनकी संवेदनाओं, भावनाओं तथा विवशताओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है। कथावस्तु का मूल आधार उपन्यास की नायिका वसुधा के इन शब्दों में ही मिलता है,- "संस्कार और परिवेश ही ऐसा रहा है मेरा जहाँ कभी मैंने अपने लिये कोई निर्णय नहीं लिया। दूसरे निर्णय सुनाते रहे और मैं उन निर्णयों के इशारे पर चलती रही। मेरी जिन्दगी दूसरे जीते रहे और मैं चुप बनी रही। इसी चुप्पीने मुझे इस चौराहे पर खड़ा कर दिया है, कि जहाँ मैं अपने अन्तर्द्वन्दों में पिसती हुई कण-कण, क्षण-क्षण मिट्‌टी हो रही हूँ।"[१] समाज के कई दायरों में फँसी वसुधा अपनी सहेली शालिनी से कहती है,-"कुछ समज नहीं आता शालू। इतने साल बाद भी अकेले जीने की आदत नहीं बन पायी है। जीने का साहस नहीं हो पाता।"[२] इसी मूल धारणा पर ही पूरी कथा विकसित हो गयी है।

प्रस्तुत कथा में कहीं-कहीं अश्लील भावों की रूमानियत का आग्राह कुछ अधिक हुआ है। विवशता में ही सही, वसुधा राघवन के प्रति शारीरिक और मानसिक रूप से कुछ ज्यादा ही समर्पित दिखाई देती है। इसका उल्लेख लेखक ने "उपकार की ओट" शीर्षक में किया है। अवचेतन मन में अतुल की यादों को समेटे तथा मानसिक

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.१११
२. - वही - - वही - - पृ.१०४

रूप से पंकज पसरीचा की ओर आकर्षित और राघवन के प्रति शारीरिक रूप से समर्पित होते हुए भी वसुधा अपनी सहेली के मित्र के मित्र सुभाष के प्रति भी आकर्षित हो जाती है। यह वसुधा के मन की अस्थिरता ही तो है। वसुधा के साथ पसरीचा को छोड़कर अन्य पात्र अस्थिर बुध्दिवाले दिखते हैं। पंकज पसरीचा स्थिर पात्र है जिनके विचारों में नैतिक आदर्शों की झलक मिलती है। उनके द्वारा लेखक ने कुशल एवं सक्षम संपादक के गौरव और गरिमा का निर्वाह करवाया है। पसरीचा वसुधा से कहते हैं -

"पत्रकार की जिन्दगी साधना की जिन्दगी होती है। उसके काम करने का कोई समय नहीं होता।"[१]

यहाँ पसरीचा लेखक के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, जो लेखक को कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी के संकेत देते हैं। चाहे वह पत्रकारिता का कार्य हो या अन्य कोई कार्य। इन्सान में हिम्मत होनी चाहिए और होनी चाहिए एक साफ-सुथरी दृढ़ इच्छाशक्ति।

उपन्यास को पढ़ने पर यह तथ्य स्थापित होता है कि स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्धों की यह पूरी कथा अत्यंत संक्षिप्त एवं संवेदनशील है। संपूर्ण कथा धीमी गति से विकसित होती है। इसमें स्थित सामाजिक यथार्थ कथा को सशक्त बनाता है। जो मध्यवर्गीय जीवन और नारी-जीवन की समस्याओं को उद्‌घाटित करता है। यही यथार्थ पाठकोंको अपनी ओर आकर्षित करता है। कथावस्तु मौलिक है। वर्णनात्मकता का अभाव होते हुए भी प्रस्तुत उपन्यास में कौतुहल बना रहता है। इसकी सहजता और सरलता पाठक की रोचकता को बढ़ाती चलती है। जिज्ञासा रोचकता की जननी है जो पाठक को अपने प्रवाह में निर्बाध बहा लेती है। कुछ इस प्रकार -

"लेकिन बीस साल पुराना वह प्रसंग। कभी छाती पर गड़ जाता है कील की तरह। कभी दिमाग पर पडता है हथौड़े की मार-सा। पंकज उस मार को आज तक नहीं भुला सके हैं। भुलाने के लिए भी याद रखना पडता है न। इसीलिए। गठरी-गठरी समय बीत गया है - बीतता जाता है। कभी कछुआ चाल से बीतती दोपहरी की तरह,

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.७०

कभी उदास-मायूस संध्या की तरह। पंकज ने अपने निरन्तर भटकते मन को बार-बार बाँधना चाहा है। बांध लेते तो कोई भय नहीं रह जाता। न अपने भीतर का, न आज का, न भवितव्य का। लेकिन मन है, खुलखुल जाता है। पद्मा की केश राशि की तरह।"[१]

इसी तरह के अनेक गंभीर प्रसंगों से उपन्यास सफल बन गया है। वातावरण व्यक्ति के निर्माण में बहुत अधिक सहायक हुआ करता है। इसके सुचित्रण से वस्तु के विधान और विकास में तो स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता आती है और पात्रों के चरित्रांकन में इन तत्वों का समावेश हुआ करता है। बाहय वातावरण के साथ पात्रों की मनस्थितियों का तादात्म्य स्थापित कर देने में लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है -

"आसमान में सूनापन फैला है, हवा चुप हो गयी है। नीचे सड़क पर गाडियों का मोनोटोनस शोर है। लेकिन पसलीचा के भीतर एक पराजित होते व्यक्ति का अहसास गड़गड़ा रहा है। एक अपमान और उपेक्षा का भाव उपेक्षित होने का दर्द। अपेक्षा की अपूर्णता का दर्द। अपेक्षा हमेशा दर्द ही क्यों देती है। व्यक्ति है तो अपेक्षा भी है। फिर यह दर्द..... यह अपूर्णता यह खालीपन.....।"[२]

प्रस्तुत उपन्यास के वस्तु विन्यास, विकास, विस्तार का एक केन्द्र है - प्रेस क्लब। यह वह केन्द्र है जहाँ पत्रकारों की चहल-पहल होती है, उनको लेकर विश्लेषण - विवेचन होता है और जीवन के यथार्थ के साथ सत्य-असत्य की चर्चा होती है और अनेक प्रकार की सनसनियों की चर्चा भी। प्रेस क्लब में उपस्थित पत्रकारों की बातचीत के माध्यम से समसामयिक वातावरण साकार किया गया है। जो उपन्यास के आरम्भ में प्रस्तुत कर दिया गया है -

"बहस। मजाक। व्यंग्य। गंभीर चर्चा।
राजनीति। औरतें। स्ट्राइक। सरकार।
रूस। अमरीका। पाकिस्तान। लंका। पंजाब आतंकवादी।

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.२१
२. - वही - - वही - - पृ.९३

विश्व-हिन्दू परिषद। शिवसेना।

कोलाबा की कॉल-गर्ल्स। धारावी के स्लम्स।

जसलोक। बीच कैंडी। "[१]

लेखक ने उपन्यास की कथा को समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाओं से जोड़कर उन्हें अधिक जीवन्त बना दिया है। यह उपन्यास की विशेषता है जो इस बात का संकेत देती है कि लेखक अपने परिवेश के प्रति कितना सतर्क है। उपन्यास में समकालीन समस्याओं और विसंगतियों का भी चित्रण हुआ है जो यथार्थ के बहुत निकट है। लेखक प्रेम-सम्बन्धों का जायजा लेते हुए भी समकालीन समस्याओं और बोध के प्रति सजग है। इसी संदर्भ में अमरिका और इराक के बीच युध्द का उल्लेख व्यंग्यात्मक शैली में किया है। सुभाष वसुधा से प्रश्न करता है -

"- आपका क्या ख्याल है, अमरीका इराक से लढ़ाई छेडेगा।

- लडाई छेडने के लिये ही तो उसने इराक को छेडा है।

- मतलब?

- मतलब साफ है। अमरीका अपनी इकॉनामी दुरूस्त करना चाहता है। इसके लिये उसके हथियार बिकने चाहिए। और लड़ाई होगी तो हथियार बिकेंगे। "[२]

इन दो प्रेमियों के बीच उभरते वार्तालापों से यह संकेत मिलता है कि लेखक बराबर देशकाल की घटनाओं से जुड़ा रहा है। अन्य समकालीन स्थितियों विसंगतियों की चर्चा भी लेखक ने अनेक स्थलों पर की है। कथा का केन्द्र बम्बई महानगर है। इसी कारण इसमें भव्य इमारतों, होटलों और समुद्र का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। अतः इस सबसे व्यक्तिवादी, स्वच्छन्दतावादी, बौध्दिक, दार्शनिक आयामों का भी स्वतः ही उद्‌घाटन होकर वस्तु को विकास देता है।

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.८

२. - वही - - वही - - पृ.७६

कथोपकथन की दृष्टि से "अन्ततः" उपन्यास में संवादों का सफल एवं सार्थक प्रयोग हुआ है। प्रश्नोत्तर शैली के प्रयोग के कारण वाक्य छोटे-छोटे होते हैं। इसमें वर्णनात्मकता का अभाव है जिसके कारण संवादो में सरसता और कौतुहल बना रहता है। इसमें नाटकीयता के विशेष गुण विद्यमान है और नाटयशैली की सार्थकता छोटे-छोटे एवं सहज स्वाभाविक संवादों के माध्यम से ही संभव है। इसमें अनेक स्थानों पर पात्रों के संवादों के माध्यम से नाटकीय प्रभाव उत्पन्न किया गया है। वसुधा और राघवन के संवाद -

"और मिस्टर पसरीचा कैसे है ?"

-"बहुत अच्छे हैं।"

-"दिल्ली से लौट आए हैं क्या ?"

-"वो दिन तो तुम्हारे बहुत अकेले बीते होंगे।"

-"मैं समझी नहीं।"

-"तुम इतनी नासमझ तो नहीं हो.....।"

-"सच ? तुम्हें पता है....? अगर मैं इतनी समझदार होती तो.....।"

-"तो क्या होता....।

-"तो शायद तुम इस वक्त यहाँ नहीं होते....।"

-"क्या मतलब....?"[१]

उपन्यास की नायिका वसुधा की दिवशता की अभिव्यक्ति संवादों के विविध रूपों में प्रस्तुत की गयी है। इनमें कहीं एकालाप का प्रयोग हुआ है। वसुधा अनेकों बार स्वयं से संबोधित होती हुअी चित्रित हुअी है। वसुधा जब अपने को अकेली तथा हीन अनुभव करती है तब उसका सुबकता हुआ मन कराह उठता है - "वसुधा, तू तो कहीं की न रही। तेरा अपना कुछ नहीं रहा। तू कूड़ा हो गयी। सब कुछ होते हुए भी तू कचरा बन गयी। क्यों हुआ ऐसा ? बोल वसुधा बोल, इस सब में तेरा कितना सहभाग है। अपने को इतना नीचा गिराने में तू कितनी जिम्मेदार है.....।"[२]

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.८१

२. - वही - - वही - - पृ.११७

एकपक्षीय टेलिफोनिक संवाद का भी इसमें एक स्थानपर प्रयोग हुआ है। वसुधा पसरीचा से बात करती है -

- "हलो.....।
- ".....।"
- "नमस्कार सर....।"
- ".....।"
- "नहीं तो। अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"
- ".....।"
- "जी हाँ, मैं ऑफिस आ रही हूँ....।"
- ".....।"
- "आप नहीं आ रहे ? क्यों तबियत ज्यादा खराब है क्या ?"
- "....।"
- "पढ़ लिया आपने.....। वह आगे कुछ नहीं कह पाती।
- ".....।"
- "कितने बजे सर.....? मेघराज में.....।"
- ".....।"
- "जी मुझे पता है। ठीक है, मैं आ जाऊँगी। साढे पाँच...।"
- ".....।"
- "थ्यैंक्यू सर। नमस्ते.....।"[१]

इसीतरह उपन्यास की भाषा-शैली में भी उपन्यासकार ने सफलता पायी है। उपन्यास की भाषा बहुत सरल, सहज और बोधगम्य है। तत्सम, तद्भव, उर्दू और आरबी-फारसी शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग यहाँ भरपूर हुआ है। कहीं कहीं तो पूरा वाक्य ही अंग्रेजी का मिलता है। जैसे -

"बी इजी वसुधा हेअर आई एम ओनली पंकज। नॉट मिस्टर पसरीचा द-एडीटर।"[२]

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.१२२

२. - वही - - वही - - पृ.४३

इसमें सामासिक शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। इससे भाषा के प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न हुआ है। यहाँ हम लेखक की मजबूरी भी लक्षित कर सकते हैं क्योंकि आधुनिक विचारों के प्रभाव के कारण और महानगरीय परिवेशमें उसकी आवश्यकता को महसूस करके ही लेखक ने अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल किया है। आजकल पढ़े-लिखे लोगों के बीच वार्तालाप में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग एक फैशन-सा हो गया है। जिसका प्रमाण आजकल के बुध्दिजीवी मध्यवर्गीय जीवन में अक्सर मिलता है।

भाषा-प्रयोग और संवाद - पात्रों के अनुकूल है। नौकर की भाषा और पंकज पसरीचा की भाषा में अन्तर है। नौकर दानसिंह "साहब" के स्थान पर "जी साब" का प्रयोग करता है। मिस्टर पंकज जब बात करते हैं तो भाषा का रूप बहुत ही परिमार्जित और प्रांजल मिलता है। राघवन और सुभाष की भाषा और शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप हल्के स्तर की है। वसुधा की भाषा और शैली में भी निखार और प्रांजलता दिखती है। अतः पूरी कृति भाषा-शिल्प और भाव की गरिमा को बनाये रखने में सक्षम हैं। उदाहरण स्वरूप -

"प्यार और वासना में अन्तर होता है। वासना के कीचड़ में मैं कभी नहीं फँसा। मेरे संस्कार ही ऐसे नहीं है। और प्यार, प्यार मेरे लिये एक निष्ठा है, पूजा है, सही सम्बन्ध है और यह सब नितान्त व्यक्तिगत है। और मैं कहूँ, मैंने तुम्हें प्यार किया है। तुम कोई भी निर्णय लो, उससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक मैं हूँ, मेरे साथ मेरी भावनाओं में तुम भी हो, तुम भी रहोगी।"[१]

२.७ शीर्षक की सार्थकता :-

"अन्ततः" उपन्यास के शीर्षक का कथावस्तु तथा मूल प्रतिपाद्य से गहरा सम्बन्ध है जिसे पढ़ते ही लेखक के उद्देश्य का थोडासा संकेत भी मिलता है। और पाठक के मन में कथावस्तु को जानने की जिज्ञासा जाग उठती है। विभिन्न शीर्षकों में विभाजित

---

१. डॉ.देवेश ठाकुर : "अन्ततः" - पृ.१२७

इस कथा का अन्तिम पड़ाव ही "अन्ततः" इस शीर्षक से पूरा हुआ है। इसे लेखक का बुध्दिचातुर्य ही कह सकते हैं। शीर्षक का भी अपना विशेष महत्व होता है। क्यों कि सम्पूर्ण कथ्य इसके आस-पास ही घुमता है। डॉ.देवेश ठाकुर ने इसका बड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। शीर्षकों में विभाजित होने के कारण उपन्यास की रोचकता बढ़ी है। इससे उपन्यास की कथा में किसी प्रकार का उलझाव भी नहीं आता। शुरू से लेकर अन्त तक पाठक की उत्सुकता बनी रहती है। कथानक मध्यवर्गीय आम जीवन से सम्बध्द होने के कारण भी अधिक रूचिकर लगता है।

२.८ निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. देवेश ठाकुर प्रयोगधर्मी रचनाकार है। "अन्ततः" की कथावस्तु के गठन एवं विकास की अवस्थाओं को लेकर देवेशजी ने शिल्पगत नवीन प्रयोग किये हैं। वर्तमान जीवन में मूल्य विघटित हो रहे हैं। अतः आज के उपन्यासों में कथावस्तु के तत्व का महत्व नहीं रहा है। बल्कि चरित्र का निर्माण करके उसके विचारों का विश्लेषण किया जाता है। अतः "अन्ततः" उपन्यास की कथावस्तु का विकास तथा मूल्यांकन परम्परागत मानदण्डों की कसौटीपर नहीं किया जा सकता। इसकी मौलिकता बेजोड़ है, परन्तु इसमें चित्रित वसुधा का चरित्र पूरी तरह पाठकों को छू नहीं पाता।

कथाविन्यास की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास को यथार्थवादी सामाजिक उपन्यासों की परम्परा में रख दिया जाता है फिर भी इसमें देवेशजी ने सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों और उनके एकायामी मनोविज्ञान को प्रस्तुत किया है। विशेषता नारी के अन्तर्द्वन्द्व और उसके निर्णय की वस्तुपरक कथापर बल दिया है। आज की शिक्षित भारतीय नारी अपना परम्परागत रूप बदल कर आर्थिक स्वावलंबन, दृढ़ता और वैयक्तिक स्वतंत्रता की ओर तेजी से बढ़ रही है। उपन्यास की नायिका वसुधा इसका प्रतिनिधित्व करती है।

कथावस्तु का मूल संवेद्य मानवीय सम्बन्धों की जटिलता को प्रस्तुत करना है, जो सर्वत्र मिलता है। जिन सम्बन्धों का उद्‌भव एवं विकास देवेशजी ने प्रस्तुत किया

है वह अलौकिक या आदर्शवादी न होकर भौतिक एवं यथार्थवादी है। अतः उन्होंने नारी-पुरूष सम्बन्धों की महत्ता, आवश्यकता और अनिवार्यता को चर्चा का प्रमुख विषय बनाया है जो पाठकों की रोचकता को बढ़ाता है। इसी विशेषता के कारण ही उपन्यास सफल बन पड़ा है।

कथावस्तु का वास्तविक मर्म उसके "अन्ततः" शीर्षक में निहित है। अतः उपन्यास का शीर्षक सार्थक है।

-o-o-o-